ISSN: 0971-8478

मार्च 2019

₹ 22

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक

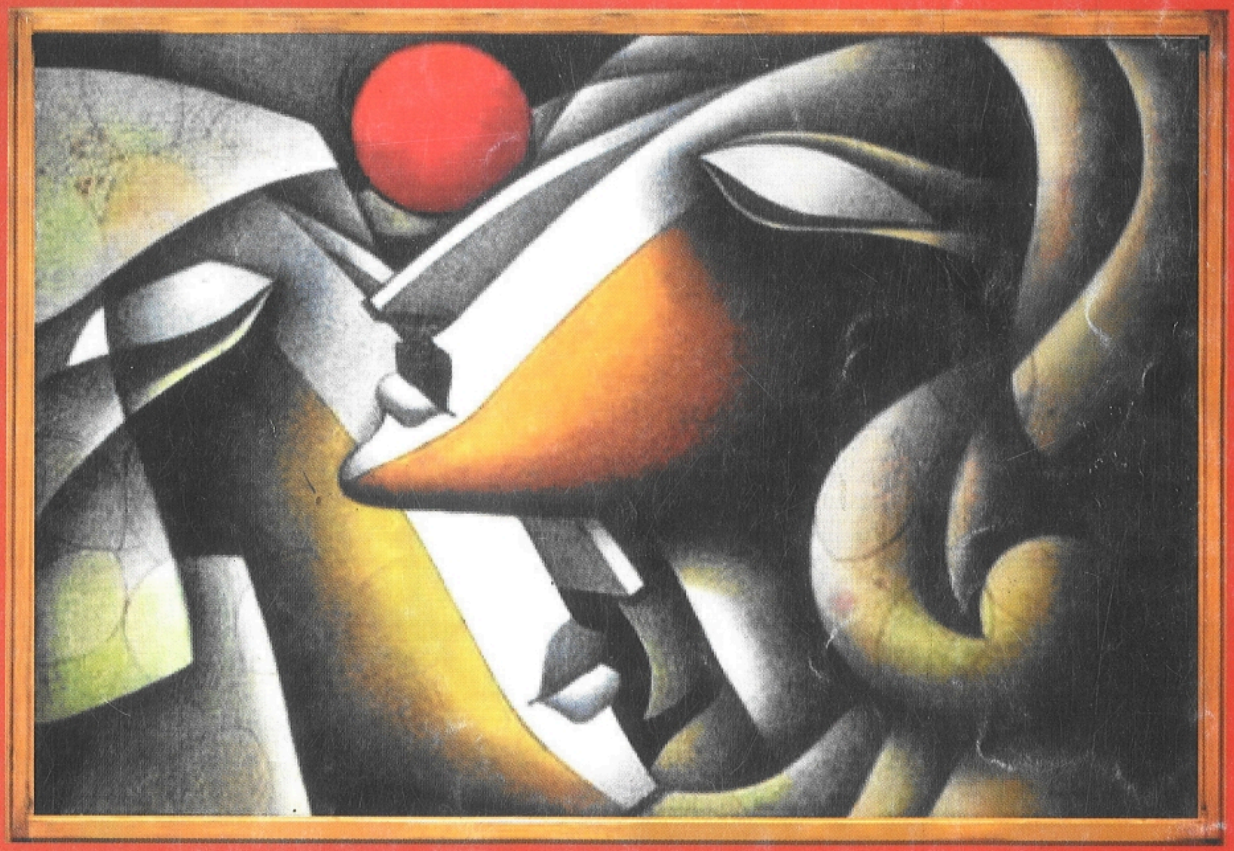

स्त्री-लेखन की नई परिघटना : एक

● लेख

हिन्दी कविता का स्त्री-स्वर

रेखा सेठी

दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के साथ-साथ लेखक, आलोचक, संपादक और अनुवादक के रूप में भी सक्रिय। कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित और संपादित।

स्त्री जीवन से लेकर स्त्री की रचनात्मक अभिव्यक्ति की अनगिनत सुगबुगाहटों से हिन्दी-कविता का फलक लगातार विस्तृत होता रहा है। यह सच है कि साहित्य को परिभाषित करने में लैंगिक अस्मिताओं की सत्ता की स्वीकार्यता नहीं रही लेकिन जब लिंग के आधार पर एक पक्ष इतना प्रबल हो कि उसकी रोशनी में दूसरा पक्ष अपने विस्तृत रूप में दिखाई ही न दे, तब उस स्थिति में उसे अलग से पहचानने की कोशिश ज़रूर होनी चाहिए। कविता की दुनिया अपने सच को पा जाने की दुनिया है। एक बड़बोले समय में जीवन के आंतरिक सच का अनुभव। दुनियाभर के कवियों ने आक्रामक और हिंसक समय में अपनी स्वाधीनता व सृजनशीलता को बचाए रखने के लिए कई ख़तरे उठाये हैं। इस संदर्भ में स्त्री रचनाकारों का संघर्ष और भी विकट है क्योंकि वहाँ दुनिया के इस भूगोल के साथ-साथ स्त्री-चेतना का आंतरिक भूगोल भी है।

भारत में स्त्री-चिंतन व लेखन की परम्परा नई नहीं है। यह मानना या कहना अनुचित होगा कि स्त्रीवाद की लहर पश्चिम से उठी है और भारतीय स्त्री की पारम्परिक छवि से इसका कोई विरोध है। स्त्री-रचनाशीलता व स्त्री-स्वतंत्रता का इतिहास दर्शाता है कि दमन और अपमान की अनेक पर्तें स्त्री अनुभव में लिपटी हुई हैं। इसलिए स्त्री-रचनाशीलता किसी सैद्धांतिकी से निर्दिष्ट न होकर स्त्री के निजी अनुभव से बनती है। समकालीन हिन्दी कविता के स्त्री-स्वर को समझने के लिए यह लेख सात कवयित्रियों पर केन्द्रित किया जा रहा है जो समकालीन होते हुए भी स्त्री-अस्मिता के अलग-अलग मायनों के साथ कविता रच रही हैं। इन कवयित्रियों में हैं गगन गिल, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, सुशीला टाकभौरे तथा निर्मला पुतुल।

गगन गिल की कविताओं का स्त्री-पक्ष, मानव अस्तित्व की गुत्थियों व जिज्ञासाओं से अभिन्न है। उनके साहित्य की धुरी उस मानवीय विवेक पर टिकी हुयी है, जिसे स्त्री-पुरुष के लिंगाधारित चौखटों में बाँधना मुश्किल है। वे मुख्यत: स्त्री के विषय में नहीं सोच रहीं बल्कि मानवीय अनुभव की जटिलतर संरचना उनकी चिंता का केन्द्र है लेकिन कवि का स्त्रीत्व अवश्य ही इस सारी प्रक्रिया में घुसपैठ करता है और चाहे-अनचाहे शब्दों-पंक्तियों के अंतराल से झाँकने लगता है। 'लड़की अभी उदास नहीं' तथा 'एक दिन लौटेगी लड़की' जैसी कविताओं को साथ रखकर देखने पर समाजीकरण की क्रूर प्रक्रिया अनावृत्त होती है। अल्हड़ यौवन की देहरी पर मन में उमंग लिए पतंग-सी उड़ती लड़की, ज़िन्दगी और दुनिया की हक़ीक़त नहीं जानती-लड़की अभी उदास नहीं है/ उदास होगी बहुत दिनों बाद.....अभी उसे कुछ नहीं मालूम/ आँख में चुभ रही पत्थर की नोक के बारे में/ कुछ नहीं मालूम उसे/ नाड़ियों में जम रहे लहू के बारे में। गगन जिस अस्मिता की तलाश कर रही हैं उसके अंतर्गत स्त्रीपक्ष का साक्षात्कार एक त्रासद अनुभव है।

कात्यायनी की चिंता के केन्द्र में व्यक्ति और व्यवस्था का द्वन्द्व पूर्ण सम्बंध है। उनकी कविताएँ स्त्री जीवन से आगे बढ़कर गहरे अर्थों में राजनैतिक कविताएँ हैं जो भारतीय लोकतंत्र में नागरिक अधिकारों की चेतना को प्राथमिक मानती हैं। बहुमुखी शोषण तथा सांप्रदायिकता के आघातों से तार-तार होती मनुष्यता को बचाने का संकल्प उनकी कविता का प्राण है। गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता व मानवीय पक्षधरता का महीन तार उनकी समस्त रचनाओं को एक सूत्र में पिरोता है। संस्थाबद्ध वर्चस्वशाली चुनौतियों के विकल्प के रूप में उन्हें कविता की सामाजिक भूमिका में गहरी आस्था है। उनकी कविता में परिवर्तन का सपना जीवंत धड़कता है। निष्ठा तथा आशा का यह स्वर ऊसर होती दुनिया को किसी भी कीमत पर बचा लेने की उत्कट जिजीविषा से जुड़ी संकल्पधर्मिता का परिणाम है। कात्यायनी की कविता में सामाजिक परिवर्तन के प्रति अटूट विश्वास उन्हें मुक्तिबोध की काव्य परम्परा में स्थापित करता है। सामाजिक चेतना का यह स्वर स्त्री कविता का विलक्षण स्वर है, जिसने स्त्री के स्त्रीत्व और दृष्टि दोनों को नई दिशा दी है। 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' कविता में आज़ाद स्त्री की छवि इस तरह उभरती है- लड़कियाँ/ पेनाल्टी कार्नर मार रही हैं/ लड़कियाँ पास दे रही हैं/ लड़कियाँ 'गोल-गोल' चिल्लाती हुई/ बीच मैदान की ओर भाग रही हैं/ लड़कियाँ एक-दूसरे पर ढह रही हैं/ एक-दूसरे को चूम रही हैं।

'पेनाल्टी कॉर्नर मारती, खुलकर हँसती लड़कियाँ' हमारे समाज में सपने जैसी हैं। बाप-भाई की कड़ी निगरानी के बाहर, समाज की थोथी मान्यताओं को धता बतातीं वे अपना स्पेस ढूँढ लेती हैं। कात्यायनी इस बिम्ब को अपनी कविता का अविस्मरणीय बिम्ब बनाकर प्रस्तुत करती हैं। वे मानती हैं कि हमारे देश में भी परिवार के पितृसत्तात्मक ढाँचे की रागात्मकता लगभग नष्ट हो चुकी है क्योंकि यह पारिवारिकता पूँजीवादी ढाँचे पर टिकी है जिसमें साधन और संपत्ति पर स्त्रियों का स्वामित्व लगभग नदारद है।

साहित्य की दुनिया में अस्मितावादी साहित्य का उभार, स्त्री साहित्य की नयी दिशाओं का संकेत है। स्त्री रचनाकार अपनी अस्मिता के प्रति सचेत होकर, सामाजिक भेदभाव की नीतियों को जिस रूप में

संपर्क : *इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली मो. 9810985759*

प्रश्नांकित करती हैं उससे स्त्री-कविता की नयी ज़मीन तैयार होती है, जिसे स्त्री-विमर्श ने अपने ढंग से पोषित करते हुए पैनी धार दी लेकिन यह भी सच है कि इस स्थिति में स्त्री रचनाकारों द्वारा रचित कविताओं को आलोचना के सीमित साँचे का शिकार होना पड़ा। उन्हें मात्र स्त्रीवादी नज़रिए से पढ़ा गया जबकि इनकी कविताओं में पितृसत्ता के विरोध आदि के साथ-साथ मानव मुक्ति का बड़ा कैनवास उभरता है। इस दौर में, अनामिका और सविता सिंह की कविताओं ने, साहित्यिक दुनिया में स्त्री-स्वर को विशिष्ट पहचान दी।

अनामिका की अनेक कविताओं में स्त्री जीवन की विडंबना व अंतर्विरोध को बखूबी उभारा गया बल्कि 'दरवाज़ा', 'स्त्रियाँ', 'बेजगह' जैसी कविताएँ अनामिका की पहचान बन गईं। इनमें स्त्री-जीवन की वंचना और पीड़ा के बिम्ब एक नई करवट लेते हैं। अनामिका ने 'स्त्रीत्व का मानचित्र' लिखकर स्त्रीवादी आलोचना की शुरुआत की थी। उसके साथ-साथ उन्होंने कविता में भी स्त्री के सामाजिक जीवन के लिए नया सौंदर्यशास्त्र प्रस्तुत किया। 'स्त्रियाँ' कविता में उन्होंने स्त्री को देखने, सुनने और समझने की नई दिशा प्रस्तावित की। इन कविताओं में 'भामती की बेटियाँ' अपना इतिहास और अपना प्रारब्ध लिखने को स्वयं सन्नद्ध हैं- मैं चैन की साँस लूँगी/ कृपा नहीं, प्रेम का प्रसाद भी नहीं लेंगी/ भामती की बेटियाँ/ ग्रन्थ अपने स्वयं ही रचेंगी/ लगातार/ इस तरह / हर युग में। अनामिका के यहाँ लोक-संस्कृति का ठाठ है जिसमें परम्परा, श्रुति-स्मृति जीवंत होकर वर्तमान और अतीत को एक धागे में बाँधते हैं। उनके यहाँ स्त्रियों का हँसता-बोलता मोहल्ला है जहाँ माएं, मौसियाँ बोलती-बतियाती अपने सुख-दु:ख की साझेदारी कर रही हैं। उनकी बंदिशें भी साझी हैं और मुक्ति भी। मुक्ति अगर कहीं है तो इसी बहनापे की भावना में है। वे बार-बार कहती रही हैं कि स्त्रीवाद ने एक चटाई बिछाई है जिस पर सब साथ हो सकते हैं अर्थात् स्त्रीवाद हर प्रकार के सत्ताक्रम के बरक्स समानता व सहभागिता की प्रतिष्ठा है।

सविता सिंह की कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' में तमाम अपवाद का जोखिम उठा कर एक स्त्री कहती है कि वह किसी की औरत होने के लेबल को पीछे छोड़ आई है- मैं किसी की औरत नहीं हूँ/ मैं अपनी औरत हूँ/मैं किसी की मार नहीं सहती/और मेरा/परमेश्वर कोई नहीं। उनकी बहुत-सी कविताओं का 'मैं' स्त्री का बहुवचन रूप है जो अपनी आशाओं-आकांक्षाओं में अपने पूर्व व बाद में आने वाली स्त्रियों से गहरे आबद्ध है। सविता की कविताओं में स्त्री का इंटलैक्चुअल एकांत भी है। स्त्री-कविता की इस परम्परा में स्त्री-अस्मिता और पितृसत्ता की ऐतिहासिक टकराहट को बखूबी पकड़ा गया है। यह व्यवस्था स्त्री के अपनी तरह होने और जीने को ख़ारिज करती है। सविता सिंह एक कविता में पितृसत्ता को स्त्री जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी के रूप में देखती हैं- उसे कभी नहीं मिला भर-पेट भोजन/ अक्सर बचा-खुचा ही मिला/ देखा संभ्रांत पुरुषों ने उसकी तरफ़/ कामवश ही अक्सर/ किया उसे मजबूर बेबस/ किसी ने दया नहीं की उस पर/ उसे प्रेम कभी नहीं मिला/ समझा गया उसे एक स्त्री ही/ फटेहाल दुर्बल। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री मर्यादा ही स्त्री के शिकार का अस्त्र बन जाती है।

सविता सिंह की कविता का स्त्री स्वर, स्त्रीत्व को नए सिरे से सिरजने की आकाँक्षा रखता है। उन्होंने अपनी कविता में लिंग आधारित असमानताओं के ख़िलाफ़ जो बहस खड़ी की उसकी परिणति एक नई सामाजिक संरचना के स्वप्न में होती है। स्त्री की वैकल्पिक दुनिया जो घोर अकेलेपन, दु:ख और यंत्रणा भरे आघातों पर सदाशीलता का मरहम रख एक नए आश्चर्यलोक का निर्माण करेगी जहाँ कोमलता द्वारा क्रूरता का स्थानापन्न संभव होगा। यह दुनिया स्त्री के प्रति तो अधिक सदय मानवीय होगी ही, दुनियाभर के वंचित समाजों के साथ उसकी सहानुभूतिपूर्ण साझेदारी भी बनेगी। यहाँ स्त्रीवाद एक नए सभ्यता विमर्श को रचता हुआ प्रतीत होता है।

इन कविताओं से साफ़ ज़ाहिर है कि हम, सामाजिक आधुनिकता की चाहे कितनी भी बात करें, समाज के मौजूदा जेंडर्ड स्ट्रक्चर से इंकार नहीं किया जा सकता। स्त्री-कविता पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध पर केन्द्रित है क्योंकि उसने महसूस कर लिया है कि स्त्री-पुरुष के बीच की असमानता, पितृसत्तात्मक ढाँचे के कारण ही है। स्त्री रचनाकारों ने इस स्थिति का वर्णन जिस गंभीरता से कविता में किया है, उतने ही तर्कसम्मत विवेक से अपने वैचारिक गद्य में भी उस भेद-भाव को अभिव्यक्त किया है। विशेष रूप से अनामिका और सविता सिंह के लेखन में। अनामिका जिसे 'मन माँझने की ज़रूरत' कहती हैं वह पुरुषों के दृष्टिबोध में अंतर का ही आग्रह है। उन्होंने बार-बार बल देकर कहा है कि स्त्रीवाद पुरुष-विरोध का पर्याय नहीं है। सविता ने भी अनेक साक्षात्कारों में इस बात पर बल दिया है कि स्त्री सशक्तीकरण की मुहिम पुरुष को अशक्त बनाना नहीं है।

नीलेश रघुवंशी, सुशीला टाकभौरे और निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्री-अस्मिता, सामाजिक भेद-भाव की अनेक परतों से जुड़ी हुई है, जिससे उनकी कविताओं में स्त्रीवाद के मायने बदल जाते हैं। स्त्री जीवन के विडंबनात्मक चित्र उनकी कविताओं में भी भरपूर मात्रा में देखने को मिलते है किन्तु उनकी प्रवृत्ति, वर्ग और जाति के पदानुक्रम से निर्मित, सामाजिक वर्ग-विभेद को केन्द्र में रखने की रही है। नीलेश की निम्न-मध्यमवर्गीय चेतना ने उन्हें समाज को देखने-परखने का अलग नज़रिया दिया। उनकी कविता उस शिक्षित युवा मन की सकारात्मक अंतर्ध्वनि है जो अपने साहस से एक नये समाज की संकल्पना करता है—पहली पगार से ख़रीदूँगी/ पिता के लिए एक पानदान/ छोटा-सा/ होंगे जिसमें मेरे सपने ग्यारह बरस के/ और उनकी जीवनभर की ख़ुशी। नीलेश ने माँ बनने के अनुभव पर भी इक्कीस कविताओं की सीरिज़ लिखी है। उसमें एक कविता में वे बच्चे के पिता पर भी अपना प्रेम ज़ाहिर करती हैं अर्थात् सृष्टि के विधान में स्त्री-पुरुष मिलकर एक इकाई रचते हैं- पुरुष, स्त्री के भाव-संसार का अभिन्न हिस्सा है। उसका प्रेम और सौंदर्य उसी में पूर्णता पाता है।

स्त्री-मुक्ति का प्रश्न वर्ग और जाति से भी गहरे जुड़ा हुआ है। दलित और आदिवासी स्त्रियों ने 'दोहरे संताप' की बात कही है। एक हाशियाकरण यदि लिंगाधारित है तो दूसरी ओर उससे बड़ी तकलीफ़ जाति आधारित अपमान और बहिष्कार की है। जाति के आधार पर पुरुष भी वही अपमान और बहिष्कार झेलता है लेकिन दलित स्त्री की स्थिति दो कारणों से अतिरिक्त संवेदनशील है। निर्मला पुतुल और सुशीला टाकभौरे की आदिवासी और दलित स्त्रियाँ इस जातिगत शोषण के संताप को तो झेलती ही हैं, पितृसत्ता के जेंडर स्टीरियोटाइप के कारण अपने परिवार के पुरुषों द्वारा दिए गए अपमान को भी झेलती हैं। सुशीला टाकभौरे, अपनी पहचान मात्र स्त्री के रूप में न कर, दलित अस्मिता से जोड़कर करती हैं- हम दलित/ आदम रूप होकर/ आदम भाषा में पूछना चाहते हैं सवाल। उनके अनुसार, "एक दलित स्त्री अपने जीवन में सबसे अधिक पीड़ा झेलती है।" पुरुषों का अपना दु:ख उन्हें नहीं सिखा पाता कि औरों को मुक्त रखें। ये सभी भेद-भाव की स्थितियाँ ठोस सामाजिक परिस्थितियाँ हैं जिन्हें स्त्री-मुक्ति की चर्चाओं का केन्द्र बनना चाहिए।

आदिवासी अस्मिता की मुखर अभिव्यक्ति, निर्मला पुतुल की कविताओं में देखने को मिलती है। उनकी कविताएँ, आदिवासी स्त्री के संघर्षों की दर्दनाक कथाएँ रचती हैं- कैसे भूल जाऊँ वह राक्षसी रात/जिसमें दुनिया की सारी संवेदनाएँ/ मेरा सबसे ऊँचा विश्वास/पवित्र

पृष्ठ 41 पर जारी...